

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

नारी-माहात्म्य प्रकरण

सत्र प्रवचने तत्र तृतीयस्य दिनस्य तु ।
अभूदुपस्थितिः सा च श्रोतॄणां महती नृणाम् ॥ १ ॥
संख्या प्रतिदिनं विज्ञजनानां वर्द्धते यतः ।
अन्वभूवन्निदं सर्वे प्रथमं यद् गृहस्थजः ॥ २ ॥
धर्मोऽपि समतुल्यः स योगसाधनया ध्रुवम् ।
निर्वाहेण च तस्यैव सीमितानामिह स्वयम् ॥ ३ ॥
मर्यादानामुदारानामनुरूपतया नरः ।
पुण्यस्य परमार्थस्य योग्यतामेति सत्वरम् ॥ ४ ॥
स हैवावधिकालेऽस्मिन्भ्यसंश्च पराक्रमम् ।
प्रतिभोपार्जनेनैव परार्थं प्रचुरं सह ॥ ५ ॥
कर्तुं क्षमो भवेदत्र श्रोतुं च वचनामृतम् ।
औत्सुक्यं सन्नृणां वीक्ष्य धौम्यः संतोषमागतः ॥ ६ ॥
यच्छ्रुतं सावधानैस्तु नरैर्मै प्रतिपादनम् ।
सार्थक्यं स्व प्रयासस्य अन्वभूत्स प्रहर्षितः ॥ ७ ॥

टीका—तीसरे दिन के सत्र प्रवचन में श्रोताओं की और भी अधिक उपस्थिति थी। विज्ञजनों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। लोगों ने प्रथम बार यह अनुभव किया कि गृहस्थ धर्म भी योगसाधन के समतुल्य है और उसका निर्वाह निर्धारित उदार मर्यादाओं के अनुरूप करने से मनुष्य पुण्य-परमार्थ का भागी बन सकता है। साथ ही इस अवधि में पराक्रम का अभ्यास करते हुए प्रतिभा अर्जन के साथ-साथ प्रचुर परमार्थ भी कर सकता है। अमृतवचन सुनने के लिए आतुर जन समुदाय की उत्सुकता देखकर महर्षि धौम्य को संतोष हो रहा था, कि उनका कथन प्रतिपादन ध्यानपूर्वक सुना गया। वे अपने प्रयास की सार्थकता अनुभव कर रहे थे ॥ १-७ ॥

गृहस्थ धर्म को सामान्यतया उपभोग प्रधान माना जाता है एवं यह समझा जाता है कि अध्यात्म की लक्ष्य सिद्धि इसमें संभव नहीं। किंतु प्रस्तुत सत्र में जो विशेष रूप से गृहस्थ जीवन को लक्ष्य करके ही आयोजित किया गया, सत्राध्यक्ष द्वारा स्थान-स्थान पर इसे एक योग साधन, जीवन देवता की साधना-आराधना की उपमा देते हुए उसके माहात्म्य पक्ष पर ही जोर दिया जाता रहा है। विभूतियों को अर्जित करने के लिए परिवार संस्था विशुद्धतः एक प्रयोगशाला-पाठशाला है, जहाँ मानवी पराक्रम की परीक्षा होती है, तदनुसार उसे उपलब्धियाँ मिलती हैं। कौन उन्हें कितना, किस प्रकार पुण्य प्रयोजन के निमित्त खरच करता है यह उसके आंतरिक स्तर

एवं सुसंस्कारिता पर निर्भर है। ऐसे हृदयग्राही प्रतिपादनों को सुनकर श्रोताओं को, स्वयं को धन्य अनुभव करना सहज ही संभाव्य है।

धौम्य उवाच

भद्रजनाः ! गृहिण्याश्च महत्त्वं वर्णितं परम् ।
वस्तुतस्तु, यतो धुर्या गृहिणी परिवारगा ॥ ८ ॥
उत्कृष्टत्वे निकृष्टत्वे तस्या एव गृहस्थजम् ।
उत्थानं पतनं नूनमाश्रितं नात्र संशयः ॥ ९ ॥
तस्याः सहायकस्त्वेष पुरुषः केवलं सदा ।
साधनान्यर्जयन्नस्या साहाय्यं विदधाति तु ॥ १० ॥
शय्या त्यागात्समारभ्य यावद्वात्रो समेऽपि च ।
शेरते तावदेवेयं गृहेऽभिरमतेऽभितः ॥ ११ ॥
तथा निरन्तरं तस्य परिवारस्य मध्यगा ।
छायेव बद्धमूला सा प्रशस्तैवाधिका हि सा ॥ १२ ॥
गृहिणी विद्यते तेन गृहलक्ष्मीरसंशयम् ।
मंदिरस्थेव देवी सा गेहे मान्या समैरपि ॥ १३ ॥
समानमनुदानं च तथैवास्त्यै विधीयताम् ।
प्रत्येकस्य गृहस्थस्य कर्त्तव्यं प्रथमं त्विदम् ॥ १४ ॥
मातुः पत्न्या भगिन्या वा कन्याया वाऽपि संस्थिता ।
रूपे नारी यदा यत्र तत्र तां स्वावलंबिनीम् ॥ १५ ॥
स्वस्थां प्रसन्नां संस्कारयुतां च प्रतिभामयीम् ।
शिक्षितां मानवः कर्तुं न्यूनतां न समाश्रयेत् ॥ १६ ॥
प्रयासाः सर्वदा कार्या नरैरेवं विधास्तथा ।
ग्राह्या चाल्पाऽपि नोपेक्षा तेषु हानेर्भयायादिह ॥ १७ ॥

टीका—महर्षि धौम्य ने कहा है भद्रजनों शास्त्रों में नारी की बड़ी महत्ता वर्णित की गई है। नारी परिवार की धुरी है, उसी की उत्कृष्टता-निकृष्टता पर गृहस्थ का उत्थान पतन निर्भर रहता है इसमें जरा भी संदेह नहीं है। पुरुष तो उसका सहायक मात्र है। वह साधन जुटाता और सहयोग देता है। प्रातः शय्या त्याग से लेकर जब तक रात्रि घर के सदस्य सोते हैं। तब तक होने वाले घर के प्रत्येक कार्य में प्रतिक्षण व्यस्तता इसी में देखी जाती है। निरंतर उस परिवार पर छाई रहने के कारण उसी की प्रशंसा अधिक है। नारी गृहलक्ष्मी है। उसे घर के देवालय में अवस्थित प्रत्यक्ष देवी माना जाना चाहिए। वैसा ही सम्मान एवं अनुदान भी उसे प्रस्तुत किया जाना चाहिए। प्रत्येक सदृगृहस्थ का प्रथम कर्त्तव्य हैं कि माता, भगिनी, पत्नी और कन्या के जिस भी रूप में नारी रहे, उसे स्वस्थ, प्रसन्न, शिक्षित, स्वावलंबी एवं सुसंस्कृत प्रतिभावान बनाने में कुछ भी कमी न रखें। इस प्रकार के प्रयत्न निरंतर

जारी रहें। उन प्रयासों की तनिक भी उपेक्षा न करें। अन्यथा महान् हानि का भय बना रहेगा ॥ ८-१७ ॥

शास्त्रों में नारी की महत्ता और उसकी गरिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि नारी ब्रह्मविद्या है, श्रद्धा है, शक्ति है, पवित्रता है, कला है, और वह सब कुछ है जो इस संसार में सर्वश्रेष्ठ के रूप में दृष्टिगोचर होता है। नारी मूर्तिमान्, कामधेनु है, अन्नपूर्णा है, सिद्धि है, ऋद्धि है, और वह सब कुछ है, जो मानव प्राणी के समस्त अभावों, कष्टों और संकटों का निवारण करने में समर्थ है। यदि उसे श्रद्धासिक्त सद्भावना से सींचा जाए तो यह सोमलता विश्व के कण-कण को स्वर्गीय परिस्थितियों से ओत-प्रोत कर सकती है।

नारी को परिवार का हृदय और प्राण कहा गया है। परिवार का संपूर्ण अस्तित्व तथा वातावरण नारी पर सुगृहिणी पर निर्भर करता है। नारी अपनी कोमलता, सुशीलता, संवेदना, करुणा, स्नेह और ममता आदि हार्दिक विशेषताओं के कारण परिवार के निर्माण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है और इन विशेषताओं के कारण ही घर-परिवार के सदस्यों के अधिक निकट रहती और उन्हें प्रभावित करती है। वृहत्संहिता में कहा गया है—

“पुरुषाणां सहस्रं च सती नारी समुद्धरेत्”।

अर्थात् सती स्त्री अपने पति का ही नहीं, अपने उत्कृष्ट आचरण की प्रत्यक्ष प्रेरणा से सहस्रों पुरुषों का उद्धार यानी श्रेष्ठता की दिशा में मार्गदर्शन करती है।

नारी स्वभावतः गृहलक्ष्मी है। घर की अंदरूनी व्यवस्था से लेकर परिवार में सुख-शांति और सौमनस्यता के वातावरण का दायित्व प्रायः नारी को ही निभाना पड़ता है। उसमें परिवार को स्वर्ग बनाने की प्रकृति प्रदत्त क्षमता विद्यमान है। इसीलिए उसे गृहिणी, सुगृहिणी, गृहलक्ष्मी जैसे सम्मानजनक विशेषणों से संबोधित किया जाता है और जीवन संगिनी के रूप में जन्म-जन्मांतरों का साथी समझा जाता है।

“पूज्या हि गृहदीप्तयः।

स्त्रियः श्रियश्च लोकेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥”

(९/२६)

गृहस्वामिनी स्त्री पूजा के योग्य है। इसमें और लक्ष्मी में कुछ भी भेद नहीं है।

गृहिणी समुन्नतैवात्र परिवारं तु स्वर्गिणम्।

विधातुं हि समर्थास्ति ततोऽस्याः क्षमतोदये ॥ १८ ॥

यः श्रमो यो मनोयोगो धनं तु विनियोगताम्।

आश्रयंति समायाति तदिहासंख्यतां गतम् ॥ १९ ॥

श्रेयो मानं च ये मर्त्या गृहिण्यै ददति स्वयम्।

अपेक्षयाऽनुदानस्यासंख्यं प्रतिफलं तु ते ॥ २० ॥

प्राप्नुवन्ति कुटुंबं तदयतः प्रतिफलं द्वयोः।

नार्या नरस्य संयुक्ताऽनुदानानां हि निश्चितम् ॥ २१ ॥

गृहिण्या भूमिका श्रेष्ठा कनिष्ठा च नरस्य तु।

खनिर्नारी नराः सर्वे खनिजा इति मन्यताम् ॥ २२ ॥

जायन्ते धातवः सर्वे खनितुल्याः खनेर्धुवम्।

कृष्णाङ्गाराश्च लौहाश्च ताम्रं चंद्रो हिरण्मयम् ॥ २३ ॥

खनेः स्वस्वानुकूलाया उद्भवन्ति यथा तथा।

श्रेष्ठा नार्यः सुतान् श्रेष्ठाञ्जनयन्ति गुणान्वितान् ॥ २४ ॥

कर्मशीलान् सुशीलांश्च प्रतिबिंबानिव स्वकान्।

मलयाचलभूमिः सा यत्रस्था गन्धिनः समे ॥ २५ ॥

टीका—समुन्नत नारी ही परिवार को स्वर्ग बना पाती है। उसकी क्षमता विकसित करने में लगाया गया श्रम, मनोयोग एवं धन असंख्यों गुना होकर लौटता है। नारी को श्रेय-सम्मान देने वाले अपने अनुदान की तुलना में असंख्य गुना प्रतिफल प्राप्त करते हैं। परिवार नर और नारी के संयुक्त अनुदानों का प्रतिफल है। इसमें नारी की भूमिका वरिष्ठ और नर की कनिष्ठ है। नारी खदान है, नर उसमें से निकलने वाला खनिज। खदान जैसी होती है, धातुएँ उसी स्तर की उसमें से निकलती हैं। कोयला, लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना आदि अपने-अपने ढंग से खदानों में से ही निकलते हैं। श्रेष्ठ स्तर की नारियाँ अपने जैसे गुण-कर्म-स्वभाव की संतानें जनती हैं। वे (चंदन वृक्ष) मलयाचल भूमि की तरह हैं। उनके सान्निध्य में बड़े-छोटे उसी प्रकार की सुगंध से महकने लगते हैं ॥ १८-२५ ॥

समुन्नत-सुसंस्कृत नारी अपने पारिवारिक राज्य में स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में पूरी तरह समर्थ है। घर के समान की सुव्यवस्था रखकर उस छोटे से घरोंदे को सुरुचि, शोभा, सौंदर्य से भरा-पूरा बना देना सुगृहिणी के बाएँ हाथ का खेल है। नीरस और ओछे स्तर के लोगों को भी अपनी परिष्कृत प्रवृत्ति में जकड़कर शालीनता के ढाँचे में ढलने-बदलने के लिए विवश कर देना, भाव संपत्ति के धनी नारी के लिए अतीत सरल है। नारी का अंतःकरण कुछ विशेष तत्त्वों के बाहुल्य से भरा-पूरा बनाया गया है। उसमें आत्मीयता और उदारता की, करुणा और कोमलता की मात्रा पुरुषों की तुलना में अधिक होती है। अपनी इस विशेषता के कारण वह रूखी और कर्कश प्रकृति के लोगों को नरम बना सकती है, उनमें सरस-सहृदयता का संचार कर सकती है। यदि घर के लोगों में सामान्य शालीनता मौजूद हो तब तो कहना ही क्या। सुसंस्कृत नारी की भूमिका उस स्थिति में सोना और सुगंध की कहावत चरितार्थ करती है।

बच्चे आसमान से नहीं उतरते। वे माता के शरीर के ही एक अंग हैं। उनमें विद्यमान चेतना का सिंचन, परिपोषण, संस्कारों का अभिवर्द्धन माता के द्वारा ही होता है। नर नर

३.२२ प्रज्ञोपनिषद्

रत्नों का उत्पादन किसी भी समाज-राष्ट्र में तभी बढ़ सकता है जब नारी की सुसंस्कारिता पर समुचित ध्यान दिया जाए। बौद्धिक ज्ञान तो पाठशालाओं में भी दिया जा सकता है। किंतु व्यक्तित्व को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालने का पुनीत कार्य परिवार की प्रयोगशाला में ही संभव हो पाता है। इसमें नर से भी बड़ी नारी की भूमिका है।

ऊसर, बंजर, रेतीली, नमकवाली, कंकड़-पत्थर वाली जमीन में फसल उगाना संभव नहीं हो पाता। अच्छी फसल पानी है तो खाद-पानी के अतिरिक्त उर्वर भूमि भी चाहिए। श्रेष्ठ स्तर की धातुएँ उसी स्तर की खदानों से उपलब्ध होती हैं। नारी को नर रत्नों को जन्म देने वाली खदान माना गया है। अगली प्रखर पीढ़ी के निर्माण की भूमिका सुविकसित नारी के माध्यम से ही संभव हो सकती है। इसलिए नारी को नर से अधिक महत्त्व दिया जाता है। वही परिवार को श्रेष्ठता से अभिपूरित, धरती का स्वर्ग बनाती है। नारी को जितने अनुदान दिए जाते हैं, चाहे वे स्नेह, सुसंस्कारिता, समर्थता, स्वावलंबन के रूप में हों अथवा सहयोग, सम्मान, संरक्षण एवं क्षमता के सुनियोजन रूप में, वे खाली नहीं जाते। इसका परिणाम पूरे परिवार, समाज, राष्ट्र को मिलता है। अतः श्रेष्ठता के पक्षधर हर व्यक्ति का यह प्रयास होना चाहिए कि वह नारी को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने हेतु किए जा रहे पुण्य पुरुषार्थ को हर संभव सहयोग दें।

नारी का सबसे बड़ा महत्त्व उसके जननी पद में निहित है। यदि जननी न होती, तो कहाँ से सृष्टि का संपादन होता और कहाँ समाज तथा राष्ट्रों की रचना होती। यदि माँ न हो तो कौन सी शक्ति होती, जो संसार से अनीति एवं अत्याचार मिटाने के लिए शूरमाओं को धरती पर उतारती। यदि माता न होती, यह बड़े-बड़े वैज्ञानिक, प्रकांड पंडित, कलाकार, अप्रतिम साहित्यकार, दार्शनिक, मनीषी, महात्मा एवं महापुरुष किसकी गोद में खेल-खेलकर धरती पर पदार्पण करते। नारी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की जननी ही नहीं, वह जगजननी है। मानवता के नाते, सहधर्मिणी होने के नाते, राष्ट्र व समाज की उन्नति के नाते उसे उसका उचित सम्मान और स्थान दिया ही जाना चाहिए।

स्नेहसौजन्ययोनार्या बाहुल्यं प्राकृतं स्वतः।

व्यक्तिनिर्माणसामर्थ्यं द्वयमेतन्निगद्यते ॥ २६ ॥

यंत्ररेखाश्रिता नूनं भूषणादिविनिर्मितिः।

कुंभकारो यथा चक्रं स्वांगुली - कौशलेन सः ॥ २७ ॥

अर्हति पात्रतां नेतुं मृदं क्लिन्नां शनैः शनैः।

तथा कुटुंबगान् नारी सर्वान् संस्कृर्तुमर्हति ॥ २८ ॥

देव्या सोपमिता नारी प्राधान्याद् यत एव ते।

देवा अनुचरास्तस्या देव्या अत्रापि सा स्थितिः ॥ २९ ॥

महत्त्वपूर्णकर्मैतत् यो नार्या प्रतिभोदयः।

कल्याणं निहितं सृष्टे समायाः कर्मणीह तु ॥ ३० ॥

अभ्यर्थना च देवीनामाख्याता या मतं बहु।

तस्या माहात्म्यमत्रैषु शास्त्रेषु वस्तुबोधकम् ॥ ३१ ॥

तुष्यंति शीघ्रं ताः सर्वा वरदानं ददत्यलम्।

प्रत्यक्षं देवतो नार्यो द्रष्टुमेतच्च संभवम् ॥ ३२ ॥

टीका—नारी में स्नेह सौजन्य की प्रकृति प्रदत्त बहुलता है। इसे व्यक्तियों के निर्माण की प्रमुख क्षमता कहा गया है। जैसा साँचा होता है, वैसे ही उपकरण आभूषण ढलते हैं। कुम्हार अपने चाक पर उँगलियों के कौशल से गीली मिट्टी को किसी प्रकार के भी बरतन में बदल सकता है, उसी प्रकार नारी अपने पिता और परिवार के छोटे-बड़े सदस्यों को इच्छानुरूप ढालने-बदलने में समर्थ है। उसे देवी ही उपमा और प्रधानता दी गई है। देवता उनके अनुचर होते हैं, वही स्थिति यहाँ भी समझनी चाहिए। नारी की प्रतिभा को निखारना, बहुत बड़ा काम है। इसमें समस्त सृष्टि का कल्याण सन्निहित है। देवियों की अभ्यर्थना का शास्त्र में बहुत माहात्म्य बताया गया है, जो वस्तुतः यथार्थ है। वे शीघ्र संतुष्ट होती और अधिक वरदान देती हैं। प्रत्यक्ष देवियों के रूप में नारी समुदाय को देखा जा सकता है ॥ २६-३२ ॥

नारी को शक्ति कहा गया है। शक्ति अर्थात् देवताओं को जन्म देने वाली, देवत्व का संस्कार प्रदान करने वाली स्रष्टा की विशेष कृति। वह अपनी कतिपय सहज ही विद्यमान विशेषताओं के कारण जहाँ भी रहती है, वहाँ के वातावरण को देवत्व से अभिपूरित कर देती है। नारी चाहे माँ के रूप में हो, भगिनी अथवा भार्या के रूप में, ममत्व की दृष्टि से संपन्न है। सहनशीलता, शिष्टाचार, करुणा एवं सौजन्य उसकी अमूल्य निधियाँ हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण वह स्वयं अपने आचरण में भी सुसंस्कारिता का समावेश करती व परिवार के अन्य सदस्यों को भी उन विभूतियों से कृतार्थ करती है।

न केवल बच्चों को नारी कुम्हार की तरह, मूर्तिकार की तरह अपने अभिभावक, सहचर, पति अन्य पारिवारिक सदस्यों को भी श्रेष्ठता के साँचे में ढालने-गढ़ने, आमूल-चूल बदलने में समर्थ है। संभवतः यही कारण है कि नारी को देवी की उपमा देकर अध्यात्म दर्शन में उसकी उपासना का प्रावधान किया गया है, ताकि उसके अनुदानों से सभी का कल्याण हो सके। ऐसी देवी स्वरूपा नारी को पददलित करना, परावलंबी बनाना निकृष्टतम कार्य है। संतान के निर्माण में ही नहीं, परिवार के समूचे निर्माण में भी पुरुष की अपेक्षा नारी की भूमिका हजार गुनी अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक प्रभावशाली है। अतः समाज को ऊँचा उठाना है तो नारी को देवी का दर्जा

देते हुए, उसके प्रति सम्मान की भावना सबके मन में जगाई जानी चाहिए।

मणयोऽपि च पंके चेन्मग्नास्तर्हि तिरस्कियाम् ।
उपेक्षां च लभन्तेऽत्र तथा तासु सतीष्वपि ॥ ३३ ॥
विशेषतासु नार्यश्चेत्कृताः स्युर्नहि संस्कृताः ।
प्रतीयन्ते ह्ययोग्यास्ता अविकासस्थिताः सदा ॥ ३४ ॥
मलिनोऽसंस्कृतो हीरः काच एव हि दृश्यते ।
टंकनादेव सौन्दर्यं भ्राजते मूल्यमाव्रजेत् ॥ ३५ ॥
सम्मुखे दर्पणस्यैष यथारागस्तथैव तु ।
छाया सा दृश्यते तस्मिंस्तथास्थितिगता सदा ॥ ३६ ॥
उत्तमा मध्यमा हेया नारी सा दृश्यते क्रमात् ।
मौलिकं तु स्वरूपं तत्तस्याः स्वच्छं न संशयः ॥ ३७ ॥
बुधैः प्रोक्ताविचार्यैव नारीह भावनामयी ।
बाधिता स्यान् तस्यास्तु भावनैषा कदाचन ॥ ३८ ॥
स्नेहं सम्मानमुत्साहदानं प्रशिक्षणं तथा ।
सहयोगं च नारी चेत्प्राप्नुयात्तर्हि निश्चितम् ॥ ३९ ॥
उच्चतां स्तर आगच्छेत्तस्या सोऽप्यञ्जसैव तु ।
कल्पवृक्षोऽस्ति नारी तु तां यो यत्नेन सिंचति ॥ ४० ॥
पुष्पाणि तस्याश्छायायां स्थितः स्वान् स मनोरथान् ।
इच्छितान् वरदानान् वै प्राप्नोत्येव सुखावहान् ॥ ४१ ॥

टीका—मणि भी कीचड़ में फँसी रहने पर उपेक्षित और तिरस्कृत रहती है। मौलिक विशेषताएँ होते हुए भी यदि नारी को निखारा-उभारा न जाए, तो वह भी पिछड़ी स्थिति में पड़ी रहती है व अयोग्य प्रतीत होती है। मैला और अनगढ़ हीरा भी काँच जैसा प्रतीत होता है। खरादने पर ही उसका सौंदर्य चमकता और मूल्यांकन होता है। दर्पण के सम्मुख जैसा भी रंग होता है, वही उसमें छाया दीखती है। परिस्थितियों के अनुरूप ही नारी उत्कृष्ट, मध्यम और हेय स्तर जैसी दीखती है। उसका स्वरूप स्फटिकमणि की तरह स्वच्छ है। यह एक सुविचारित तथ्य है कि नारी भावना प्रधान है। उसकी भावना को चोट न लगने पाए। उसे समुचित स्नेह, सम्मान, प्रोत्साहन, प्रशिक्षण और सहयोग दिया जाए, तो उसका स्तर ऊँचा उठाना तनिक भी कठिन नहीं। नारी कल्पवृक्ष है, जो उसे लगनपूर्वक सींचता-पालता है, वह उसकी छाया में बैठकर मनोरथ पूरा करता और इच्छित प्रतिफल वरदान रूप में प्राप्त करता है ॥ ३३-४१ ॥

नारी को देवमानवों नर रत्नों को जन्म देने वाली खदान की उपमा ऋषि ने दी है, किंतु इस स्थिति को भी स्पष्ट कर दिया है कि पिछड़ेपन का कारण समाज का उपेक्षा भरा रूप है। वह उस हीरे के समान है जिसे खराद पर चढ़ाया व तराशा नहीं गया है। उसका मूलभूत रूप अत्यंत उज्ज्वल, स्वच्छ एवं श्रेष्ठता से युक्त है। अंगारे पर चढ़ी राख की परत

उसके ज्वलनशील ताप प्रदान करने वाले गुण को उजागर नहीं होने देती। नारी भी एक प्रकार से ऐसे ही उपेक्षित पड़े अंगारे, कोयले के ढेर में पड़े हीरे की तरह अनगढ़ स्थिति में होती है। जहाँ समाज जागृत होता है, वहाँ या तो स्वयं नारी की ओर से अथवा प्रगतिशील नागरिकों द्वारा ऐसे प्रयास होते हैं, जिससे कठिनाइयों के बीच से उसका रूप और भी अधिक निखरकर आता है। वह प्रखरता की मूर्ति के रूप में उभरकर आती है और समाज को नवीन चेतना प्रदान करती है, नई दिशा धारा दे जाती है।

मूलतः नारी की मानसिक बनावट भावनात्मक है वह तर्कों से नहीं, भाव संवेदनाओं से अभिप्रेरित होकर अपनी जीवन दिशा बनाती है। भावुक हृदय होने के कारण अत्यंत वत्सला नारी को उसकी करुणा सहज ही उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर विराट् विश्व का एक अभिन्न अंग बना देती है। इसीलिए कवि रस्किन ने कहा है, माता का हृदय एक स्नेहपूर्ण निर्झर है, जो सृष्टि के आदि से अनवरत झरता हुआ मानवता का सिंचन कर रहा है। नारी की भाव-संवेदनाओं को यदि समुचित पोषण मिलता रहे, तो उसका अभ्युदय संभव है, सुलभ है। यह भी अनिवार्य है कि उसकी भावुक मानसिकता का दोहन न हो, ऐसी स्थिति में वह अंदर से टूट जाती है।

नारी को परिवार तथा समाज के अन्यान्य सदस्यों का स्नेह श्रद्धा और सम्मान भरा सहयोग भी चाहिए। उसके बहुमुखी स्तर को ऊँचा उठाने के लिए समुचित प्रशिक्षण प्रोत्साहन की व्यवस्था अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए। शास्त्रकारों ने नारी के साथ कदम-कदम पर सहयोग और सम्मान करने का निर्देश दिया है तथा उसी आधार पर परिवार में सुख-शांति व सुव्यवस्था की स्थापना को संभव बताया है।

यदि कुलोन्नयने सरसं मनो,
यदि विलासकलासु कूतुहलम् ।
यदि निजत्वमभीप्सितनेकदा,
कुरु सतीं श्रुतशीलवतीं तदा ॥

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे कुल की उन्नति हो, यदि तुम अपना और अपनी संतान का कल्याण करना चाहते हो, तो अपनी कन्या को विद्या, धर्म और शील से युक्त करो।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवैस्तथा ।

पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रियाः ॥

—मनु० ३/५५-५६

पिता, भाई, पति और देवर जो भी कोई परिवार में हों, यदि वे अपना कल्याण चाहते हैं, तो उन्हें चाहिए कि वे

३.२४ प्रज्ञोपनिषद्

स्त्रियों का सम्मान करें और उन्हें प्रसन्न रखें। जहाँ स्त्रियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं, और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता, वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। नारी की उपमा ऋषि ने उस कल्पवृक्ष के रूप में दी है जिसके सान्निध्य से सब कुछ पाया जा सकता है। यदि उसे समुचित सम्मान मिलता रहे, उसे ऊँचा उठाने के प्रयास चलते रहें, तो प्रत्युत्तर में वह अनुदानों की वर्षा कर सारे समाज को उपकृत करती, धन्य बनाती है। वह मानव के समस्त मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है।

विवेकिनां हि दायित्वमिदं यन्यूनता नहि।

नारीशिक्षाविधौ स्याच्च दायित्वं प्रतिबोधिता ॥ ४२ ॥

निर्वाहाय तथैषां च मार्गदर्शनमिष्यते।

सहयोगश्च दातव्यः शिक्षा योग्याऽप्यपेक्षते ॥ ४३ ॥

नार्याः शिक्षणमेतस्या बौद्धिकं व्यवहारगम्।

भवेदीदृशमेवन् यदाश्रित्य परिस्थितिः ॥ ४४ ॥

प्रतिकर्तुं समर्था सा भवेदिह तथा निजम्।

परिवारं विधातुं च प्रोन्नतं प्रभवेदपि ॥ ४५ ॥

शिक्षां निरर्थकां दत्त्वा भाररूपां नहि श्रमम्।

समयं चापि तस्यास्तु नाशितुं युज्यते क्वचित् ॥ ४६ ॥

भवेन्नारी स्वावलम्बं श्रिता शीलयुता भवेत्।

न संकोचं गता चैवं भवेद् यच्छोचितं तथा ॥ ४७ ॥

वक्तुं न क्षमता तिष्ठेद्दासीभावं व्रजेन च।

गृहलक्ष्म्याः स्वरूपे सा स्वतो विकसिता भवेत् ॥ ४८ ॥

कौशलं चेदृशं तस्या भवेद् यद् यद्यपेक्ष्यते।

अर्थोपार्जनमेषां तत्कर्तुं च प्रभवेदपि ॥ ४९ ॥

नराश्रयं विनैवैषा स्वयं दद्यादपि स्वकान्।

आश्रयं सहयोगं च सर्वानन्यानपि क्वचित् ॥ ५० ॥

टीका—विचारशीलों का यह दायित्व है कि नारी शिक्षा में कमी न रहने दी जाए। उसे अपने महान् उत्तरदायित्वों का ज्ञान कराया जाए। उसके निर्वाह के लिए मार्ग दिखाया जाए और सहयोग दिया जाए। उसके अनुरूप प्रशिक्षण व्यवस्था की नितांत आवश्यकता है। नारी का बौद्धिक एवं व्यावहारिक शिक्षण ऐसा हो, जिसके आधार पर उसे प्रस्तुत परिस्थितियों का सामना करते हुए अपने संपर्क परिकर को समुन्नत कर सकना संभव हो सके। निरर्थक शिक्षा का भार लादकर, उसका श्रम बरबाद न किया जाए नारी को स्वावलम्बी बनने दिया जाए। वह शीलवती बनी रहे, किंतु इतनी संकोची भी न बने जिससे सोचने, बोलने और करने की क्षमता ही चली जाए। उसे दासी न बनाया जाए। गृहलक्ष्मी के रूप में विकसित किया जाए। उसका कौशल ऐसा रहना चाहिए कि आवश्यकतानुसार उपार्जन भी कर सके। पराश्रित न रहकर वह समयानुसार दूसरों को आश्रय एवं सहयोग भी प्रदान कर

सके ॥ ४२-५० ॥

नारी जो राष्ट्र की जननी और निर्मात्री है, वह अविकसित स्थिति में अँधेरे में भटक रही है। यदि समाज की प्रगति हमें अभीष्ट है, तो नारी को परावलम्बन के गर्त से निकाल कर उसे स्वावलम्बी, सुसंस्कारी बनाना होगा। यह कार्य सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक शिक्षण द्वारा ही संभव है एवं इस दिशा में सभी अनिवार्य कदम उत्साहपूर्वक उठाए जाने चाहिए। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि जहाँ भी जिस भी समुदाय में स्वाभिमानी, सुसंस्कृत, श्रमशील नारी विद्यमान होती है, वह समाज निश्चित ही प्रगति करता है। ऐसे ही परिकर में देवत्व हम सबका है कि नारी का शील सुरक्षित बनाए रख उसे स्वावलम्बी बनाएँ, ताकि वह अपनी विभूतियों का लाभ समाज को दे सके।

नारी के शिक्षण हेतु स्तर के अनुरूप भिन्न-भिन्न उपाय अपनाने पड़ सकते हैं। इसका निर्धारण समाज की परिस्थिति एवं नारी की मनःस्थिति को देखकर ही किया जा सकता है।

परिवारस्य कार्येषु नरः कुर्यात् सदैव च।

सहयोगं गृहिण्याः सा समयं येन चाप्नुयात् ॥ ५१ ॥

व्यवस्था स्वच्छता हेतोः सज्जा हेतोश्च सद्मनः।

वार्तलापे कलानां च कौशलेऽथापि सा स्वयम् ॥ ५२ ॥

समस्यानां समाधाने भूमिकां निर्वहेत्स्वकाम्।

अतिव्यस्तस्थितौ स्यान् किमप्याचरितुं क्षमा ॥ ५३ ॥

कुटुंबदिनचर्याऽथ व्यवस्थाया विधिश्च सः।

परंपरा तथैवं स्याद् येन पाकविधावुत ॥ ५४ ॥

स्वच्छतायां न नष्टः स्यात्सर्वोऽस्याः समयो महान्।

ईदृशी सुविधा यत्र तत्रत्या गृहिणी नहि ॥ ५५ ॥

अनुभवत्यथ काठिन्यं विकासं योग्यतामपि।

सुसंस्कारानवाप्तुं यत् कुटुंबाय महत्त्वगम् ॥ ५६ ॥

नार्याः श्रमस्य कर्तव्य उपयोगो विशेषतः।

युगं नवं ततो नारीप्रधानं भविता शुभम् ॥ ५७ ॥

सृजनस्य नवस्यास्यां क्षमता भावनात्मिका।

बाहुल्येनास्ति चागामिदिवसेषु भविष्यति ॥ ५८ ॥

समाजो भावना मुख्यः स्तरस्याऽस्य विनिर्मितेः।

क्षमता मुख्यतो दत्ता स्रष्टा नार्या न संशयः ॥ ५९ ॥

निर्माणाय युगस्यापि नेतृत्वायस्त्रियस्ततः।

नः प्रमादो विलंबो वा कार्यो वर्चः परिष्कृतौ ॥ ६० ॥

टीका—घर परिवार के कार्यों में पुरुष नारी का हाथ बँटाए। उन्हें इतना अवकाश दें कि परिवार की व्यवस्था, स्वच्छता, सज्जा ठीक प्रकार रख सके। वार्तलाप कला-कौशल एवं समस्याओं के समाधान में अपनी भूमिका निभा सके। घोर व्यस्तता की स्थिति में तो वे कुछ भी न कर सकेगी। पारिवारिक दिनचर्या, विधि-व्यवस्था और परंपरा

ऐसी रहे, जिसमें उसे पाकशाला स्वच्छता में ही सारा समय न खपाना पड़े। ऐसी सुविधा जहाँ होती है, वहाँ नारी को सुविकसित, सुसंस्कृत एवं सुयोग्य बनने में विशेष कठिनाई नहीं रह जाती। यह पारिवारिक हित में बहुत महत्वपूर्ण है नारी-श्रम का अधिक महत्वपूर्ण उपयोग करने की आवश्यकता है। हे सज्जनो नवयुग नारी प्रधान होगा। नवसृजन की भावनात्मक क्षमता की उसी में बहुलता है। अगले दिनों भावना प्रधान समाज बनेगा। उस स्तर के निर्माण की क्षमता नारी में ही स्पष्टा ने प्रमुखतापूर्वक प्रदान की है, इसमें संदेह नहीं। युग का निर्माण और नेतृत्व करने के लिए उसका वर्चस्व करने में न विलंब किया जाए, न प्रमाद बरता जाए ॥ ५१-६० ॥

आज समाज में चलन यही है कि पत्नी को चारदीवारी में बंद रहकर घर की सुव्यवस्था बनानी चाहिए, एवं जहाँ तक संभव हो पुरुष, बालकों व अन्य पारिवारिक सदस्यों के विकास हेतु खपना चाहिए सदियों से वह यही करती आई है। पर्दाप्रथा जैसी कुरीतियों ने ऐसी त्रासदी और बढ़ाई है।

यह मानस समुदाय के हित में ही है कि पुरुष व स्त्री दोनों मिल-जुलकर परिवार रूपी रथ की गाड़ी खींचें। नारी को इतना समय मिलना चाहिए कि वह परिवार की सुसंस्कारिता, सुव्यवस्था बनाए रखने के अतिरिक्त स्वयं को सर्वांगीण पूर्ण प्रगति के लिए समय निकाल सके। यह कदम पुरुष समुदाय की ओर से ही उठना चाहिए, क्योंकि इसमें नारी के साथ-साथ उनका हित-साधन भी होता है विश्व संतुलन नारी के पक्ष में जा रहा है। अब कहीं-कहीं नारी जागृति के स्वर मुखरित होने लगे हैं। जहाँ अवसर मिला है, नारी स्वयं आगे आई है व परावलंबन की जंजीरें तोड़कर उसने प्रगतिशील भूमिका निभाई है।

यहाँ ऋषि कहते हैं कि आने वाला समय मूलतः भाव प्रधान होगा एवं इसका सुसंचालन नारी शक्ति करेगी। ऐसी स्थिति में यह न केवल सृष्टा की इच्छा के विपरीत है, अपितु एक तरह से मनुष्य की तुच्छता ही है कि वह नारी को विकास हेतु आगे बढ़ने देने का अवसर न दे। नया समाज लाने नव-निर्माण करने एवं मानव में देवत्व, धरती पर स्वर्ग जैसी परिस्थितियों को उतारने के लिए नारी की शक्ति को निखारना, उसे प्रखर बनाना समय की एक महती आवश्यकता है। अगले दिनों नारी द्वारा विश्व का नेतृत्व किए जाने की संभावना इसलिए अधिक है कि पददलित वर्ग को अगले दिनों अनीति मूलक प्रतिबंधों से छुटकारा पाने का अवसर मिलने ही वाला है। ऐसी दशा में वे अपने को सुविकसित एवं सुयोग्य बनाने का प्रयत्न करेंगी, फलस्वरूप प्रकृति का पूर्ण सहयोग भी उन्हें मिलेगा और विश्व के नव निर्माण में अपनी

महत्वपूर्ण भूमिका संपादित करेंगी।

योग्यदायित्वनिर्वाहे स्वस्थस्य वपुस्तथा।

तुलिताया मनोभूमेरनुभूतेस्तथैव च ॥ ६१ ॥

अपेक्षा कौशलस्यास्ति तेन चावसरस्त्वयम्।

नार्या लभ्येत यत्नोऽत्र नूनं कर्तव्य इष्यते ॥ ६२ ॥

सुविधाश्च समा एता संयुक्ताः स्युस्तदैव तु।

नारीं पुराणकालस्य स्तरं प्रापयितुं भवेत् ॥ ६३ ॥

वातावृत्तिं समानेतुं कृतस्येव युगस्य तु।

उचितां भूमिकां वोढुं गृहिणी तून्तस्तथा ॥ ६४ ॥

विधेया यत्नतो नारी नरेणैव गतेषु तु।

दिनेष्वनीतियुक्तैश्च प्रतिबंधैः सुपीडिता ॥ ६५ ॥

नीता दुर्गतिमद्यापि न सा तस्मादुदेत्यहो।

अर्द्धांगिनीदशाहेतोः संकटैर्नर आवृतः ॥ ६६ ॥

प्रायश्चित्तमिदं तस्योत्साहेन द्विगुणेन हि।

तस्या उत्थानकर्मैतद् विधेयं यत्नतो नरैः ॥ ६७ ॥

टीका—महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निर्वाह में स्वस्थ शरीर, संतुलित मनोबल, अनुभव एवं कौशल अपेक्षित है। नारी को इस योग्य बनने का अवसर मिलना आवश्यक है। ये सभी सुविधाएँ जुटाने से ही नारी को प्राचीनकाल की तरह समुन्नत स्तर तक पहुँचाया जा सकेगा। सतयुग का वातावरण वापस लाने के लिए नारी को उपयुक्त भूमिका निभा सकने योग्य स्तर का बनाया जाना चाहिए। पिछले दिनों नारी को अनीति भरे प्रतिबंधों में जकड़कर नर ने ही उसे दुर्गतिग्रस्त किया है। इसी से आज भी वह उठ नहीं पा रही है तथा अर्द्धांगिनी की दुर्दशा से नर भी संकटों से घिरा है। उसका प्रायश्चित्त यही है कि दूने उत्साह से उसके उत्थान की व्यवस्था बनाई जाए ॥ ६१-६७ ॥

नारी में समुचित आत्मबल है। फिर भी समाज रूपी रणक्षेत्र में ऊँचा उठने के लिए उसे कौशल अर्जन, स्वास्थ्य संवर्द्धन एवं पुरुष के सहयोग की आवश्यकता है। अभी तक तो उसे पराधीनता के पाश में ही जकड़ा जाता रहा है। फलश्रुतियाँ सामने हैं। मध्यकाल के अनीति व दमन से भरे समय में पुरुष समुदाय ने नारी-शक्ति का दोहन भी किया व उसे पददलित भी। उसे दंड स्वरूप अवगति के गर्त में जाना पड़ा है। नारी की दुर्दशा का अर्थ है, नर का संकटों से घिरना। अब यदि सत्प्रवृत्तियों से भरा नया समाज बनाना है, सतयुग लाना है, तो नारी के प्रसुप्त मनोबल को उभारना एवं उसे परिपूर्ण सहयोग देना ही पुरुषों का प्रायश्चित्त हो सकता है। नारी में शक्ति का अजस्र स्तोत्र छिपा है, उसे उजागर करने भर की आवश्यकता है। जब-जब भी अवसर आए उसने आगे बढ़कर मोरचा हाथ में लेकर, अपनी साहसिकता का परिचय दिया है।

३.२६ प्रज्ञोपनिषद्

अबलात्वाच्च नार्यास्तु नात्याचारस्तु कश्चन ।
कोमलांग्या भवेदित्यमेतदर्थं च निश्चितम् ॥ ६८ ॥
समस्तस्य समाजस्य भाव उद्बुद्ध इष्यते ।
अनीत्याश्रयिणो नैव नराः स्युर्दण्डवञ्चिताः ॥ ६९ ॥
व्यवस्था चेदुशीकार्या मूर्द्धन्यैः पुरुषैः सदा ।
सामाजिकं च दायित्वं तैरुत्थं स्वयमेव च ॥ ७० ॥

टीका—नारी की सहज दुर्बलता के कारण उस पर कहीं कोई अत्याचार न होने पाए, इसके लिए समस्त समाज की जागरूकता आवश्यक है। अनीति करने वाले दंड से बचने न पाएँ, ऐसी व्यवस्था, मूर्द्धन्यों को साहसपूर्वक बनानी चाहिए, व्यवस्था संबंधी सामाजिक दायित्व स्वयं ही उन्हें स्वीकार करने चाहिए ॥ ६८-७० ॥

नारी मनस्वी भी है, तेजस्वी भी, पर उसकी विशेषताएँ दबी रह जाती हैं। शरीर बल के नाते पुरुष जाति का उस पर आधिपत्य ही रहा। उसे अन्य वैभव संपत्ति की भाँति ही, एक आभूषण मानकर अधिकार जताने की विडंबना भर होती रही है। समाज के हर सदस्य को जागरूक विवेकशील बनकर अनीति के प्रतिकार का साहस जुटाना चाहिए। कहीं भी ऐसे अत्याचार होते देखें, तो उनका विरोध बलपूर्वक कर समाज की सुव्यवस्था बिठाने का दायित्व मूर्द्धन्य नागरिकों का ही है। इसमें पुरुषों की तो प्रायश्चित्त कर्त्ता होने के नाते महत्वपूर्ण भूमिका है ही, जागृत नारी को भी अपना दायित्व निभाना चाहिए। जो अनीति करे, उन्हें किसी न किसी रूप में उसका प्रतीक रूप में दंड अवश्य मिले, ताकि आगे वे कभी ऐसा दुस्साहस न कर सकें।

संख्याद्धं दलितानां तु स्थितौ संप्रेष्यमानवान् ।
सर्वानेव पराभूतेः पतनस्य स्थितौ स्थितान् ॥ ७१ ॥
कृत्वाऽनर्थः कृतो यस्तु तमग्रे नाचरेदिह ।
अर्द्धनारीश्वरा जातिर्मानवानां दलोपमा ॥ ७२ ॥
अधिकाराः समानास्ते दायित्वानि समानि च ।
उभयोः शकटस्येव चक्रयोः सहगामिता ॥ ७३ ॥
अपेक्ष्यते न कश्चिच्च बाधेतान्यं कदाचन ।
कृताभिस्त्रुटिभिः शिक्षामधिगत्य झटित्यलम् ॥ ७४ ॥
अनाचारस्य नाशस्तु भवितव्य इहाधुना ।
प्रतिभा परिचयं दातुं लभेतावसरं च सा ॥ ७५ ॥
संदर्भेऽस्मिन्नस्यास्ति दायित्वमधिकं स्वयम् ।
हानिं प्राप नरः स्वाभ्यस्त्रुटिभ्यो विपुलामपि ॥ ७६ ॥
परिष्कारे त्रुटीनां च कुर्यात्तत्परतां ततः ।
नर एव लभेतापि लाभ सोऽधिकमप्यतः ॥ ७७ ॥

टीका—आधी जनसंख्या को पददलित स्थिति में धकेल कर समूचे मानव समुदाय को पतन-पराभव की स्थिति में रखने का अनर्थ अब आगे और न किया जाए। नर और नारी

दोनों ही बीज के दो दलों के समान मनुष्य जाति के अविच्छिन्न अंग हैं। दोनों के अधिकार और उत्तरदायित्व समान हैं। दोनों के मध्य गाड़ी के पहियों का सा सहयोग होना चाहिए। कोई किसी पर हावी होने का प्रयत्न न करे। पिछली भूलों से शिक्षा लेकर इस संदर्भ में चलते रहे अनाचार का अब अंत होना चाहिए। उसे अपनी प्रतिभा का परिचय देने के लिए कार्यक्षेत्र में उतरने का अवसर मिलना चाहिए। इस संदर्भ में नर का उत्तरदायित्व विशेष है। की गई भूलों से हानि भी उसी को उठानी पड़ी है। सुधारने में पुरुष को ही अधिक तत्परता बरतनी चाहिए। लाभ भी अपेक्षाकृत उसी को अधिक मिलेगा ॥ ७१-७७ ॥

संसार के सभी क्षेत्रों में नारी पीड़ित और पददलित रही है। इसका प्रमुख कारण नारी संबंधी अतिवाद का एक सिरा यह है कि कामिनी, रमणी, वैश्या आदि बनाकर उसे आकर्षण का केंद्र बनाया गया। अतिवाद का दूसरा सिरा है, उसे परदे, घूँघट की कठोर जंजीरों में जकड़कर अपंग सदृश बना दिया गया। उस पर इतने प्रतिबंध लगाए गए, जितने बंदी और पशु भी सहन नहीं कर सकते। जेल के कैदियों को थोड़ा घूमने-फिरने की, हँसने-बोलने की आजादी रहती है। पर घर की छोटी-सी कोठरी में कैद नववधू के लिए परिवार के छोटी आयु वालों के सामने ही बोलने की छूट है। बड़ी आयु वालों से तो उसे परदा ही करना होता है। न उनके सामने मुँह खोला जा सकता है और न उनसे बात की जा सकती है। परदा सो परदा-प्रथा प्रतिबंध सो प्रतिबंध इसमें न्याय, औचित्य और विवेक के लिए क्यों गुंजाइश छोड़ी जाए? पशु को मुँह पर नकाब लगाकर नहीं रहना पड़ता। वे दूसरों के चेहरे देख सकते हैं। और अपने दिखा सकते हैं। जब मरजी हो, चाहे जिसके सामने अपनी टूटी-फूटी वाणी बोल सकते हैं। पर नारी को इतने अधिकार से भी वंचित कर दिया गया। इस अमानवीय प्रतिबंध की प्रतिक्रिया बुरी हुई। नारी शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत पिछड़ गई। भारत में नर की अपेक्षा नारी की मृत्यु दर बहुत अधिक है। मानसिक दृष्टि से वह आत्महीनता की ग्रंथियों में जकड़ी पड़ी है। सहमी, झिझकी, डरी, घबराई, दीन-हीन अपराधिन की तरह वह यहाँ-वहाँ लुकती-छिपती देखी जा सकती है। अन्याय-अत्याचार और अपमान पग-पग पर सहते-सहते क्रमशः अपनी सभी मौलिक विशेषताएँ खोती चली गई। आज औसत नारी उस नीबू की तरह है, जिसका रस निचोड़कर उसे कूड़े में फेंक दिया जाता है।

पुरुष-स्त्री वस्तुतः समान हैं, एक ही रथ के दो पहिए हैं। न कोई बड़ा है, न छोटा। जब तक यह मान्यता गृहस्थाश्रम एवं समाज व्यवस्था में विकसित परिपक्व नहीं होगी, नारी

पददलित ही बनी रहेगी।

सर्वसाधारण को इस तथ्य से परिचित कराया जाना चाहिए कि नर-नारी का सघन सहयोग यदि पवित्र पृष्ठभूमि पर विकसित किया जाए, तो उससे किसी को कुछ भी हानि नहीं है, वरन् सबका सब प्रकार लाभ ही होगा। नारी कोई बिजली या आग नहीं है, जिसे छूते ही या देखते ही कोई अनर्थ हो जाए। उसे अलग-अलग रखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार तथाकथित संत-महात्माओं को कहा जाना चाहिए कि वे अपने मन की संकीर्णता, क्षुद्रता और कलुषत से डरें। उसे ही भवबंधन मानें। नरक की खान वही है। नारी को उस लांछना से लांछित कर उस मानव जाति की भर्त्सना न करें, जिसके पेट से वे स्वयं पैदा हुए हैं, और जिसका दूध पीकर इतने बड़े हुए हैं। अच्छा हो हमारी जीभ पुत्री को न कोसे, भगिनी को लांछित न करे, नारी नरक की खान हो सकती है, यह कुकल्पना अध्यात्म के किसी आदर्श या सिद्धांत से तालमेल नहीं खाती। यदि बात ऐसी ही होती, तो अपने इष्टदेव राम, कृष्ण, शिव आदि नारी को पास न आने देते। ऋषि आश्रमों में ऋषिकाएँ न रहतीं। सरस्वती, काली, लक्ष्मी आदि देवियों का मुख देखने से पाप लग गया होता। निरर्थक की डींगें न हॉकें, तो अच्छा ही है। अंतरात्मा, प्रज्ञा, भक्ति, साधना, मुक्ति, सिद्धि यह सभी स्त्रीलिंग हैं। यदि नारी नरक की खान है, तो इन स्त्रीलिंग शब्दों के साथ जुड़ी हुई विभूतियों को भी बहिष्कृत किया जाना चाहिए। अच्छा हो अध्यात्मवाद के नाम पर भौंडा भ्रम जंजाल अपने और दूसरों को दिग्भ्रांत करने की अपेक्षा उसे समेटकर अजायबघर की कोठरी में बंद कर दिया जाए।

न्याय, औचित्य और स्वतंत्रता का समर्थन करने वाले, मानवी आदर्श को मान्यता देने वाले, उदात्त मनस्वी लोगों को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि नारी घर के उत्तरदायित्व तो सँभाले, पर उतने ही क्षेत्र में कैद न रहे। उसके ऊपर लगा परदा प्रतिबंध शिथिल होना चाहिए और विश्वसनीय माना जाना चाहिए। शिक्षित होने, अनुभव बढ़ाने, समाज का स्वरूप समझने, लोकमंगल के प्रयोजनों में भाग लेने का पूर्ण अवसर नारी को दिया जाना चाहिए। इससे मानव जाति की आधी

शक्ति मूर्च्छित आत्मा को जगाने का पथ-प्रशस्त होगा और समूची मानव जाति को इस प्रगतिशील कदम का लाभ मिलेगा।

उपदेशेन चानेन तत्रस्थानामभूत्स्वतः ।

नारीणां स्वगरिम्णस्तु बोधो विस्मयकारकः ॥ ७८ ॥

संकल्पश्च नवस्तेन तासां प्रादुरभूद् हृदि ।

कर्तुं नव्यं च निर्माणं स्वस्तरस्य तथैव च ॥ ७९ ॥

कर्तृत्वस्योत्थितेश्चापि सोत्साहं सहसाऽद्भुतम् ।

उपेक्षकाश्च नारीणामन्वभूवन्स्त्रुटीर्निजाः ॥ ८० ॥

व्यवहारं निजं तेऽपि भविष्यत्समये समे ।

निरचिन्वन् विधातुं तु परिवर्तितमाशु च ॥ ८१ ॥

टीका—इस प्रवचन से उपस्थित नारियों को अपनी गरिमा का विस्मयकारी बोध हुआ। अपने स्तर, उत्थान एवं कर्तृत्व का अभिनव निर्माण करने के लिए मन में नया संकल्प उभरा। जो नारी के प्रति उपेक्षा बरतते थे, उन्हें अपनी भूल का अनुभव हुआ। भविष्य में उनसे भी अपना व्यवहार बदलने का निश्चय किया ॥ ७८-८१ ॥

अपनी विस्मृत गरिमा का बोध होना भी एक विलक्षण योग है। उपस्थित नर-नारी समुदाय ने अपनी-अपनी कमजोरियों को भी जाना एवं अंदर छिपी महानता को भी पहचाना। कथोपदेश सुनकर ही अंदर से स्वयं को बदलने की इच्छा उमगती है। नारी समुदाय में आत्मोत्थान के प्रति सजा मानसिकता का उदय निश्चित ही एक शुभ लक्षण है।

सत्रमद्यतनं दिव्यं समाप्तं च यथाविधि ।

दृष्ट्वा सूर्यास्तवेलां च नित्यकर्मविधित्सया ॥ ८२ ॥

ययुः सर्वे निवासान् स्वान् प्रस्फुरद्विव्यचिंतनाः ।

अर्द्धनारीश्वरं रूपं विजानंतो शिवस्य तत् ॥ ८३ ॥

सत्यं यच्च शिवं नृणां सुन्दरं स्वर्गदं भुवि ।

प्रज्ञायुगस्य दृश्यं तत् क्षणं बुद्धौ विदिद्युते ॥ ८४ ॥

टीका—आज का सत्र भी यथाविधि संपन्न हुआ। सूर्यास्त की वेला देखकर सभी अपने निवास स्थलों पर नित्यकर्म के लिए चले गए। उनके चिंतन में दिव्यस्फुरण हो रहा था। शिवजी का अर्द्धनारीश्वर रूप मानव विज्ञान के रूप में उन्हें दीखा, जो सत्य-शिव-सुंदरम् का प्रतिबिम्ब था। भावी प्रज्ञायुग की एक झलक-सी उनके मस्तिष्क में कौंध गई ॥ ८२-८४ ॥

॥ इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,

श्री धौम्य ऋषि प्रतिपादिते नारी माहात्म्ये इति प्रकरणो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥